नियमसार, शुद्धोपयोग अधिकार। यहाँ यह कहना है कि आत्मा पर का तो कुछ कर नहीं सकता। अपने में अपनी पर्याय में पर्याय उलट-पलट कर सकता है। पर में तो कुछ कर नहीं सकता; और पर को जानना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! कहाँ ले जाना है? पर को जानता है, वह पर में तन्मय होकर नहीं जानता; पर से भिन्न रहकर जानता है। अपने अस्तित्व में स्व और पर को जानने की ताकत है, तो अपने अस्तित्व में ही जानता है। पर के अस्तित्व से और अस्तित्व में नहीं जानता। आहाहा! पर का कर तो नहीं सकता।

निश्चय से तो अपने राग का भी कर्ता नहीं है। पर्यायदृष्टि मिथ्यादृष्टि में कर्ता है। आहाहा! स्वभावदृष्टि में उसका कर्ता नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि द्रव्य पर दृष्टि करते हुए स्व-पर को जानना स्वयं से स्वतः होता है। यह बात चलती है।

फिर से लेते हैं। '**पराश्रितो व्यवहारः**' जितना पराश्रित हो, उस सबको व्यवहार कहते हैं। **ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, व्यवहारनय से वे भगवान...** आहाहा! **परमेश्वर परमभट्टारक आत्मगुणों का घात करनेवाले...** निमित्त से कथन है। **घातिकर्मों के नाश द्वारा...** अपने गुण में घात करने में निमित्त है। उस निमित्त का भी अपने गुण से घात करके। उन्हें निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। पर का घात करना, वह अपने अधिकार की बात नहीं है। वह परमाणु की पर्याय अपने पलटने के काल में पलटती है। यहाँ राग-द्वेष नहीं किये तो उसने पलटायी—उसने कर्म का नाश किया—ऐसा व्यवहार कहने में आता है। ओहोहो! यहाँ तक व्यवहार। यहाँ तो अभी बाहर का यह करना... यह करना... और यह करना... आहाहा! पर का तो कुछ करता नहीं, परन्तु अपने में राग होता है, उसका भी परमार्थ से कर्ता नहीं है। परमार्थ से तो उसे जाननेवाला भी नहीं है। अपने ज्ञानस्वभाव में स्व-पर प्रकाशक शक्ति होने से अपने को जानता है। पर को जानता है - ऐसा कहना, वह व्यवहारनय है।

व्यवहारनय से वे भगवान परमेश्वर परमभट्टारक आत्मगुणों का घात करनेवाले घातिकर्मों के नाश द्वारा प्राप्त सकल-विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन द्वारा त्रिलोकवर्ती तथा त्रिकालवर्ती... त्रिलोकवर्ती-त्रिकालवर्ती। आहाहा! तीन लोक में वर्तनेवाले और तीन काल में वर्तनेवाले। **सचराचर...** आहाहा! **द्रव्य-गुण-पर्यायों को...** द्रव्य अर्थात् वस्तु; गुण अर्थात् उसकी शक्ति; पर्याय अर्थात् उसकी अवस्था। प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय को एक समय में जानने की ताकत है। **एक समय में जानते हैं और देखते हैं।** आहाहा!

शुद्धनिश्चय से परमेश्वर महादेवाधिदेव सर्वज्ञवीतराग को, परद्रव्य के ग्राहकत्व,... परद्रव्य के जाननेवाले और परद्रव्य के देखनेवाले। **परद्रव्य के ग्राहकत्व, दर्शकत्व, ज्ञायकत्व आदि के विविध विकल्पों की सेना की उत्पत्ति मूलध्यान में अभावरूप होने से...** मूल में है नहीं। आहाहा! पर को ग्रहण करना, पर को जानना, पर को देखना... आहाहा! यह अपने मूल ध्यान में नहीं है। **वे भगवान त्रिकाल-निरुपाधि,...** आहाहा! निर-अवधि—मर्यादारहित **नित्यशुद्ध...** त्रिकाली शुद्ध द्रव्य और पर्याय सादि-अनन्त।

नित्यशुद्ध ऐसे सहजज्ञान और सहजदर्शन द्वारा निज कारणपरमात्मा को,... आहाहा! निज कारणपरमात्मा, त्रिकाली चीज़, ध्रुव चीज़। आहाहा! **स्वयं कार्य (रूप) परमात्मा होने पर भी,...** आहाहा! अपने स्वरूप में केवलज्ञान और केवलदर्शन **कार्यपरमात्मा होने पर भी, जानते हैं और देखते हैं।** अपने को देखते-जानते हैं। आहाहा! पूर्ण स्वरूप प्रगट हुआ, तो भी अपने को देखते-जानते हैं। आहाहा! **किस प्रकार? इस ज्ञान का धर्म तो,...** इस ज्ञान का स्वभाव; जो ज्ञान अपना स्वभाव है, उसका स्वभाव धर्म **दीपक की भाँति,...** दीपक की भाँति। अपना ज्ञान का स्वभाव दीपक की भाँति... आहाहा! **स्व-परप्रकाशकपना है।** जैसे दीपक अपने को प्रकाशित करता है और घट-पटादि पदार्थों को प्रकाशित करता है; उसी प्रकार आत्मा अपने को ज्ञान-दर्शनरूप जानता है। अपने को जानता है। आहाहा!

घटादि की प्रमिति से प्रकाश-दीपक (कथंचित्) भिन्न होने पर भी... घटादि की प्रमिति से प्रकाश-दीपक (कथंचित्) भिन्न होने पर भी। पररूप प्रकाशित चीज़ से दीपक कथंचित् भिन्न है। आहाहा! **घटादि की प्रमिति से प्रकाश**- आहाहा! **दीपक (कथंचित्) भिन्न...** अपने से कथंचित् भिन्न है। अपने को जानता है और जाननेवाला, ऐसे कथंचित् भिन्न है। आहाहा! स्वयं को जानता है और जाननेवाला भी स्वयं, वह भी कथंचित् भिन्न है। आहाहा! तो परचीज़ की बात ही कहाँ करना? परचीज़ तो भिन्न है ही। आहाहा! परचीज़ के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है, स्पर्श नहीं है। परचीज़ के साथ स्पर्श नहीं है, प्रवेश नहीं है। आहाहा! अपनी चीज़ में दीपक जैसे प्रमिति और प्रमाण, स्वयं अपने को जानता है और जाननेयोग्य, ऐसे कथंचित् भिन्न पड़ता है। आहाहा! **घटादि की प्रमिति से प्रकाश-दीपक (कथंचित्) भिन्न होने पर भी स्वयं प्रकाशस्वरूप होने से...** दीपक का प्रकाश स्वयं है। आहाहा! **स्व और पर को प्रकाशित करता है;...** आहाहा! दीपक अपने में रहकर स्व और पर को प्रकाशित करता है। आहाहा!

आत्मा भी... यह थोड़ी सूक्ष्म बात है। **ज्योतिस्वरूप होने से व्यवहार से त्रिलोक और त्रिकालरूप पर को...** आहाहा! प्रकाशस्वरूप होने पर भी, चैतन्य का प्रकाश स्वभाव, जानने का स्वभाव, ऐसा होने पर भी... आहाहा! **आत्मा भी ज्योतिस्वरूप होने से व्यवहार से त्रिलोक और त्रिकालरूप पर को...** आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें। अपना

प्रकाशस्वभाव स्व-परप्रकाशक होने पर भी, पर को व्यवहार से जानता-देखता है। **त्रिलोक और त्रिकालरूप पर को तथा स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मा को (स्वयं को) प्रकाशित करता है।** व्यवहार से। अपने को और पर को जानना, यह दो में व्यवहार हुआ। आहाहा! अपने को भी जाने और पर को भी जाने, यह व्यवहार हो गया। पर को जानना, यह (व्यवहार हो गया)। समझ में आता है यह? बहुत सूक्ष्म बात! आहाहा! चैतन्य ज्योत... दीपक जैसे स्वयं में रहकर स्वयं को प्रकाशित करता है और घटपटादि को प्रकाशित करता है। वह अपने में रहकर, यह व्यवहार। ऐसे ज्योतिरूप चैतन्य आत्मा अपने को जानता है और त्रिलोक तथा त्रिकाल जो अपने से भिन्न है, उन्हें व्यवहार से जानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर को तो व्यवहार से जानता है और अपने को निश्चय से जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने को निश्चय से। व्यवहार हो गया न? परवस्तु, वह व्यवहार; स्ववस्तु, वह निश्चय। स्व को जानना, वह निश्चय; पर को जानना, वह व्यवहार। आहाहा! पर को अपना मानना, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! और अपने स्वभाव में पर से कुछ होता है, मुझमें पर से फेरफार होता है, यह भी मिथ्याभ्रान्ति है, परन्तु अपने में जानने की ताकत है, वह त्रिकाल और त्रिलोक को जाने... आहाहा! उसे भी व्यवहार कहा जाता है। ओहोहो! यहाँ तक कहाँ जाए? अभी तो यहाँ पर का करना है, पूरे दिन पर का करना और मदद करना, सहायता करना, पर के कार्य करना, इसके बिना कमा किस प्रकार सके? पच्चीस-पचास हजार का बारह महीने का खर्च हो। वह सब कमावे, दुकान चलावे, यह करे, यह करे तो यह सब होता है या नहीं? आहाहा! कुछ नहीं होता। यह पच्चीस-पचास हजार का आना या न आना, वह परमाणु की पर्याय की ताकत है।

गुजराती में ऐसा कहा जाता है न? हिन्दी में भी है। 'दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम।' नाम है? परन्तु वह जो चीज़ आनेवाली है, वह आयेगी। एक परमाणु का फेरफार नहीं होगा। जितने परमाणु, जितने प्रमाण में आनेवाले होंगे, वे आयेंगे; नहीं आनेवाले होंगे, वे नहीं आयेंगे। आत्मा उसमें कुछ ला सके या घटा सके या फेरफार कर सके (नहीं)। आहाहा! दाल, भात, रोटी खाने में भी कम खाना और अधिक खाना, यह आत्मा नहीं कर सकता।

मुमुक्ष : चबाकर तो खाना चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा चबा सकता ही नहीं न ! आत्मा पर को चबा सकता ही नहीं। पर को छूता ही नहीं। आहाहा !

दुनिया में तो ऐसा कहा जाता है कि पेट में कहीं दाँत नहीं है, इसलिए बराबर चबाकर खाना कि जिससे अन्दर जाकर पचे। आहाहा ! सब मिथ्या है। एक परमाणु का दबा सके या छू सके, ऐसा नहीं होता। आहाहा ! यह तो वीतराग का मार्ग है। वीतराग-तीन काल का ज्ञान, त्रिकाली सर्वज्ञ परमात्मा सब जानते हैं। परन्तु कहते हैं कि सर्व को जानते हैं-ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा !

मुमुक्षु : पर को जाने, वह व्यवहार...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर है न ? जिसमें तन्मय होकर न जाने, वह व्यवहार है। आत्मा शरीर को तन्मय होकर नहीं जानता। आत्मा अरूपी, शरीर रूपी। आहाहा ! दाल, भात, रोटी रूपी, जड़ और आत्मा चैतन्य। वह चैतन्य पर को स्पर्श कर खाता है-पीता है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! लो ! ऐसी बात ! पर से तो बिल्कुल पंगु है। अपने में पुरुषार्थ करके परमात्मा हो सकता है। पर के लिये तो पंगु है।

मुमुक्षु : परमात्मा तो सर्वशक्तिमान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपनी शक्ति में। अपनी शक्ति अपने में। यह प्रश्न भी उठा है कि आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं तो एक शक्ति ऐसी भी होनी चाहिए, वह लाओ तो क्या तकलीफ है ? पर का कर सके, ऐसी एक शक्ति होवे तो क्या तकलीफ है ? यह भी प्रश्न उठा था शास्त्र में। अपने को जानता है, वैसे पर को भी जानता है और पर का कर सकता है, अनन्त शक्तियाँ है तो उसमें एक शक्ति यह लेना। परन्तु ऐसी कोई शक्ति नहीं होती। आहाहा !

अपने स्वरूप में पर का तो कर्ता नहीं, राग का कर्ता नहीं, परन्तु राग को और पर को जानना, यह भी व्यवहार है। आहाहा ! जानना, वह व्यवहार है। करने का तो है ही नहीं। आहाहा ! ऐसा मार्ग किसे रुचे ? पूरे दिन काम करना हो। अब अन्दर से भिन्न पड़कर मुर्दा हो जाए। पर के लिये तो मुर्दा हो जाए, तब हो। आहाहा !

आत्मा भी ज्योतिस्वरूप होने से व्यवहार से त्रिलोक और त्रिकालरूप... आहाहा! तीन काल को जाने, यह भी व्यवहार है। आहाहा! वस्तु को जाने, यह तो व्यवहार है, परन्तु तीन काल को जाने, यह भी व्यवहार है, क्योंकि परचीज़ है। आत्मा अपने को, अपने में जानता है, यह भी एक भेद है, व्यवहार है। यह पहले आ गया। आत्मा, आत्मा को जानता है, यह भी व्यवहार है। वह तो ज्ञायक, ज्ञायक ही है, बस! आहाहा! यह पहले आ गया। समझ में आया?

पर का कर्ता नहीं, पर को जानता नहीं, अपने में अपने को जानता है। ज्ञायक, ज्ञायक को जानता है, यह भी व्यवहार है। यह व्यवहार भी अभूतार्थ है। ज्ञायक, ज्ञायक है। जाननेवाला, जाननेवाला है, बस! किसे जानता है, यह प्रश्न नहीं। जाननेवाला है। आहाहा! अपने को जानता है, यह भी व्यवहार है। अरे! पहले आ गया है। समयसार में (आ गया है)। ऐसी बात बैठना! पूरे दिन व्यवहार क्रियाकाण्ड में रचापचा (हो), एक तो पूरे दिन दुकान में रचापचा हो, उसमें से थोड़ा समय लेकर शाम को सामायिक करना। एकाध शाम को और एकाध सवेरे उठकर। यह आसन बिछाकर णमो अरिहंताणं... तिक्खुत्तो... ऐसा करके हो गयी सामायिक, हो गया धर्म, लो! अरे! भाई! यह धर्म नहीं है। आहाहा!

अपनी चीज़ पर को स्पर्श नहीं करती तो पर को जाने, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। क्या कहा? अपनी चीज़ पर को स्पर्श नहीं करती तो पर को जानना, ऐसा कहना भी व्यवहार है। आहाहा! अपने में भेद करना कि ज्ञान आत्मा को जानता है, यह भी व्यवहार है। यह सद्भूतव्यवहार है। पर को जानता है-ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यवहार है। आहाहा! अब ऐसा धर्म का उपदेश! पूरे दिन यह करना - करना चले, उसमें कुछ जानने में भी तू तुझे जानता है और जाननेवाला, जाननेवाले को जानता है, ऐसा भेद भी व्यवहार है। आहाहा! पर को जानता है, यह तो व्यवहार है ही, क्योंकि पर को कभी स्पर्श नहीं करता और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में कभी प्रवेश नहीं करता। आहाहा! और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! बिच्छु काटे तो बिच्छु ने शरीर को स्पर्श नहीं करता। सर्प काटे तो सर्प ने शरीर को स्पर्श भी नहीं किया। आहाहा! अब यहाँ इतने अधिक जाना! निवृत्ति कहाँ?

मुमुक्षु : जहर तो चढ़ जाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर चढ़ता है, वह तो स्वयं के परमाणुओं में (फेरफार होता है)। वह स्वयं के परमाणुओं के कारण से है। ऐसी चीज़ कठिन है। अनन्त परमाणु स्वयं में है। स्वयं में जो पर्याय होनेवाली होवे तो वह निमित्त है। निमित्त से कुछ हुआ नहीं। आहाहा! कठिन बात है। दुनिया से अलग प्रकार है। सत्य को तो सत्य रखना चाहिए। सत्य को असत्य करने से तुझे लाभ नहीं होगा। आहाहा!

ज्योतिस्वरूप भगवान आत्मा, जानन-देखन स्वभाव, वह पर को जानता-देखता है, कहना, यह व्यवहार है, क्योंकि पर में तन्मय होकर नहीं जानता, पर को स्पर्श कर नहीं जानता। पर को प्रवेश करके नहीं जानता। अपने में प्रवेश करके अपने को जानता है। आहाहा! ऐसा व्यवहार धर्म! यहाँ तो कहे-एकेन्द्रिय की दया पालो, दो इन्द्रिय की दया पालो, तस्समिच्छामि दुक्कडम करो पाप लगा हो तो। आहाहा! तस्सउत्तरीकरणेण प्रायश्चित करणेण विसोहि करणेण, कायोत्सर्ग करो। यहाँ कहते हैं, शरीर को हिला सकता नहीं, उसमें करे क्या? कायोत्सर्ग तो उसे कहते हैं कि रागरूपी परिणाम है, उसे भी स्पर्श नहीं करना और अपने आनन्द में रहना, वह कायोत्सर्ग है। आहाहा! कहाँ बाहर की और कहाँ अन्दर की चीज़! बहुत अन्तर हो गया।

यह कहते हैं **पर को तथा स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मा को (स्वयं को) प्रकाशित करता है।** आहाहा! व्यवहार से त्रिलोक को और त्रिकालरूप पर को **तथा स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मा को (स्वयं को) प्रकाशित करता है।** आहाहा! है अन्तिम लाईन? **६९ पाखण्डियों पर विजय प्राप्त करने से जिन्होंने विशाल कीर्ति प्राप्त की है, ऐसे महासेनपण्डितदेव ने भी (श्लोक द्वारा) कहा है कि:—** आहाहा! नीचे भाई ने लिखा है, टीका में कुछ अशुद्धि है। **वस्तु का यथार्थ निर्णय, सो सम्यग्ज्ञान है।** यह श्लोक का अर्थ है। आहाहा!

वस्तु का यथार्थ निर्णय (अर्थात्) जैसी चीज़ है, वैसा निर्णय होना, इसका नाम सम्यग्ज्ञान है। भगवान ने कुछ बनाया नहीं। कोई भगवान ने कुछ नहीं किया। वाणी भी भगवान ने नहीं की है। आहाहा! वाणी भी वाणी के कारण से निकली है। भगवान ने जाना है तो स्व-परप्रकाशक अपनी शक्ति है। वाणी में स्व-पर कहने की शक्ति है। वह वाणी,

वाणी से निकलती है; भगवान के मुख के कारण नहीं। अभी अखबार में इसकी चर्चा चली थी। कोई कहे कि भगवान के मुखारविन्द से वाणी निकलती है। मुखारविन्द (-ऐसी) भाषा सब जगह आती है। यह शब्द बहुत जगह आता है। मुखारविन्द से वाणी निकलती है। बड़ी चर्चा चली है। अभी लेख आते हैं। कोई कहे कि मुखारविन्द से नहीं; पूरे शरीर से निकलती है। भगवान को वाणी निकलती है, वह पूरे शरीर में से निकलती है। ॐध्वनि खिरती है। यह सत्य है। आहाहा! स्वयं से निकलती है, पर से नहीं निकलती। आहाहा! वाणी भी स्वयं के कारण से निकलती है। भगवान तो वाणी में निमित्त है। निमित्त का अर्थ कि निमित्त, वाणी को कुछ नहीं करता। वाणी को ज्ञान स्पर्श भी नहीं करता। केवलज्ञानी का ज्ञान... आहाहा! वह वाणी को स्पर्श भी नहीं करता, तो भगवान वाणी के कहनेवाले हैं, यह तो व्यवहार का कथन है। आहाहा! ओहोहो!

भेदज्ञान सूक्ष्म बात है, भाई! पदार्थ को जैसा है, वैसा भिन्न, भिन्नरूप जैसा पदार्थ रहता है, जाननेवाला पर को जाने तो भी भिन्न रहता है, इसलिए पर को जानना व्यवहार कहा गया है। आहाहा! पर को जानने के काल में आत्मा अपना ज्ञान पर में तन्मय नहीं करता। पर को स्पर्श नहीं करता, चुम्बन नहीं करता। आहाहा! तो पर को जानता है (-यह) कहना, वह तो व्यवहार है। अपने को जाने, वह निश्चय, सद्भूतव्यवहार है। वह तो असद्भूत-झूठा व्यवहार है। आहाहा! कठिन बातें। यह सब भगवान की वाणी और शास्त्र बनाया, वह मानना या नहीं? 'ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रची आगम उपदेश, भविक जीव संशय निवारे।' निमित्त-निमित्त के कथन तो ऐसे आते हैं, परन्तु उन्हें समझना चाहिए। निमित्त-व्यवहार का कथन तो आता है।

भगवान को ऐसा अतिशय था। अतिशय तो अतिशय में है; भगवान, भगवान में है। आहाहा! बात बहुत सूक्ष्म! भगवान दिव्यध्वनि से बोलते थे। ॐकार से बोलते थे, यह भी व्यवहार है। ॐ, ॐकार से स्वतन्त्र निकलता है। आत्मा स्वतन्त्र अपने ज्ञान में जानता है, बस! आहाहा! इतने अधिक (पहुँचना)। अभी तो यह हाथ को हिला सकता नहीं, इसे ऐसे कर सकता नहीं, अंगुली से ऐसा हुआ ही नहीं। उसकी पर्याय ऐसी होने की थी तो हुई, तो निमित्त कहने में आया। निमित्त है तो ऐसा हुआ है-ऐसा है नहीं। आहाहा! वीतराग की वाणी बहुत कठिन। प्रत्येक वस्तु जैसी है, वैसी जानी और जानकर

वाणी में प्रकाश करने का स्वभाव धर्म है तो प्रकाशित हुई। आहाहा! इसलिए वाणी को भी व्यवहार से (पूज्य कही है)। पहले समयसार में आ गया। व्यवहार से पूज्य है। आहाहा! आत्मा बोल नहीं सकता; बोले, उसे जान नहीं सकता। आहाहा! क्योंकि भाषा पर है, आत्मा पर है, तो पर को जानना, कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! अब जानता है या नहीं जानता? दो का निर्णय तो करना या नहीं?

मुमुक्षु : पहले ज्ञान को जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन जाने? प्रभु! अपने को जानता है। व्यवहार से ज्ञात होता है। अपनी पर्याय में उस सम्बन्धी का ज्ञान अपने से, अपने में, अपने कारण से प्रगट हुआ है। वह चीज़ है तो चीज़ की अस्ति से यहाँ ज्ञान प्रगट हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! उस परचीज़ का ज्ञान स्वयं से उत्पन्न हुआ है। अपने ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक होने से। आहाहा! यहाँ तक ले जाना।

वस्तु का यथार्थ निर्णय, सो सम्यग्ज्ञान है। श्लोक का अर्थ है। है? श्लोक का है? श्लोक का अर्थ है। पहला श्लोक है न? **वह सम्यग्ज्ञान, दीपक की भाँति,...** वह सम्यग्ज्ञान दीपक की भाँति **स्व के और (पर) पदार्थों के निर्णयात्मक है...** जाननेवाला है। आहाहा! **तथा प्रमिति से (ज्ञप्ति से) कथंचित् भिन्न है।** आहाहा! जानने की क्रिया... आहाहा! कथंचित् चेतनद्रव्य से भिन्न है। आहाहा! प्रमिति जो जानने की क्रिया होती है, तो जानने की क्रिया तो एक समय की है; वस्तु त्रिकाली है। त्रिकाली में उस पर्याय का प्रवेश नहीं और उस पर्याय की उत्पत्ति स्वयं से हुई है; द्रव्य से भी नहीं। आहाहा! सब बातें ऐसी, अब लिखने जाए कब? याद रखे कब? आहाहा! सम्प्रदाय में तो बाहर की बात। एकेन्द्रिय (की दया) करो, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो और वह करते... करते... वह क्रिया मैं करता हूँ - ऐसा मानना, यह मिथ्यात्व है। आहाहा! मैं आसन बिछाता हूँ, मैं णमो अरिहंताणं बोलता हूँ... आहाहा! सब मिथ्यात्व है। गजब बात है, प्रभु! कितनों ने तो ऐसी बात कभी सुनी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **प्रमिति से (ज्ञप्ति से) कथंचित् भिन्न है।** अपने में जानने की पर्याय से भी द्रव्य कथंचित् भिन्न है। पर्याय तो एक समय रहती है और द्रव्य तो त्रिकाल है। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ तो कथंचित् अभिन्न भी कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इसकी पर्याय है न? इस अपेक्षा से। परन्तु पर्याय और द्रव्य एक नहीं है। आहाहा! पर्याय की एक समय की अवधि, द्रव्य की त्रिकाल अवधि। आहा! तो अपनी जानने की शक्ति पर्याय में गयी, वह जानने की शक्ति भी पर से तो नहीं, पर को तो जानता नहीं, परन्तु जानने की शक्ति द्रव्य की है, वह कथंचित् भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

जाननेवाला जानता है। पर को और स्व को दोनों को, पूर्ण स्वरूप भगवान जानता है, परन्तु पर को जानना, वह पर को स्पर्श नहीं करता। पर सन्मुख उपयोग गया नहीं। उपयोग तो अपना स्वसन्मुख है। भगवान का उपयोग तो स्वसन्मुख है; पर में उपयोग नहीं है और स्वसन्मुख के उपयोग में पर का ज्ञान आ गया। आहाहा! ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म! यह अन्तिम अधिकार सूक्ष्म है।

सवेरे आया था न, प्रकृति का, वह सूक्ष्म था। प्रकृति पूर्व में बाँधी हुई सबकी समान नहीं होती। जिसे जितनी जो प्रकृति हो उतनी। बँधी हुई हो, वह उदय में आवे, उसे आत्मा भोगता नहीं। आहाहा! यहाँ तो खाना-पीना-ओढ़ना-पहिनना सभी क्रिया मैं कर सकता हूँ (-ऐसा अज्ञानी मानते हैं)। आहाहा!

बात यह है, तू है कौन? तू है कौन? और तुझमें है क्या? तू आत्मा है और तुझमें ज्ञान है। तू आत्मा है और आत्मा में ज्ञान है; तो वह ज्ञान जानता है। वह अपने को जाने, यह निश्चय, क्योंकि अपने में तन्मय है। परन्तु मैंने मुझे जाना, यह भी भेद है। आहाहा! ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। यह पहले आ गया। ज्ञायक, ज्ञायक ही है। ज्ञायक अपने को जाने और पर को जाने, ऐसा नहीं; ज्ञायक तो ज्ञायक है। आहाहा! अब उसे पर की दया पालने का कहना, सत्य बोलना, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, शरीर से। शरीर को ब्रह्मचर्य में रोके रखना - यह क्रिया जड़ की है। वह अपने से रुकती है? अपने से होती है? अपने से होती है तो अपने से रुके? बात ऐसी है, बापू! भगवान का मार्ग जैसे बहुत खुल्ला करने जाए तो बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

एक परमाणु में अनन्त गुण, एक आत्मा में अनन्त गुण। वे गुण अनन्त कहना, यह भी एक भेद है। गुण-गुणी का भेद करना, यह भी व्यवहार है। आहाहा! अरे! गुण-गुणी

का भेद करके रहना, यह भी विकल्प है। आहाहा! मैं ज्ञायक हूँ – ऐसा कहना, और इस विकल्प में रहना, यह भी विकल्प है। आहाहा! मैं गुणी हूँ और यह गुण है, यह भी विकल्प है। फिर द्रव्य है और गुण है और पर्याय है, यह भी विकल्प है–राग है। आहाहा!

यहाँ तो जाननेवाला जानता है, स्वयं को प्रमिति को जानता है, यह भी भेद-व्यवहार है। आहाहा! आया न अन्दर? **पदार्थों के निर्णयात्मक है तथा प्रमिति से (ज्ञप्ति से) कथंचित् भिन्न है।** जानने की पर्याय से तो भिन्न है, परन्तु अपना आत्मा कथंचित् भिन्न है। यहाँ तो यह परपदार्थ में लिया है। **दीपक की भाँति, स्व के और (पर) पदार्थों के निर्णयात्मक है तथा प्रमिति से (ज्ञप्ति से) कथंचित् भिन्न है।** आहाहा! दीपक का प्रकाश, दीपक और उसका प्रकाश प्रकाशित करता है, वह भी भिन्न हो गया, वह भी सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! दीपक पर को प्रकाशित करता है। यह तो असद्भूतव्यवहार है, झूठा व्यवहार है। आहाहा! इसी तरह आत्मा पर को जानता है, यह असद्भूतव्यवहार–झूठा व्यवहार है। आत्मा अपनी पर्याय को जानता है, यह भी सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! अब ऐसी बात कहाँ लेना? निवृत्ति नहीं मिलती।

ऐसा समय चला जाता है। मृत्यु के समीप जाता है। देह के छूटने की जो अवधि है, वह समय बदले, ऐसा नहीं है। लाख इन्द्र उतरे और कोई (डाक्टर) दवा, इंजेक्शन लगा दे और अमेरिका ले जाए और अमुक ले जाए। अभी ले जाते हैं न? अमुक दवा के लिये अमेरिका ले जाए, इंग्लैण्ड ले जाए, लन्दन ले जाए। आहाहा! लाख ले जाए। जो पर्याय जिस काल में जो होनी है, वह होगी। उसमें फेरफार करने को इन्द्र, नरेन्द्र और जिनेन्द्र (भी) समर्थ नहीं हैं। आहाहा! ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र सुनने को नहीं मिलती। वीतराग परमात्मा के अलावा (अन्यत्र कहीं है नहीं)। पागल जैसा लगे।

प्रत्यक्ष करते हैं न? यह कहा था न उस दिन, यह बात हुई थी। 'चिमन चकु' कहे – लो, यह किया। नहीं कर सकता... नहीं कर सकता... अरे! परन्तु प्रभु! धीर-धीर हो। ऐसा किया उसमें क्या हुआ? अन्दर में क्या हुआ? उसमें क्या हुआ? दो पदार्थ भिन्न है या नहीं? यह शरीर पदार्थ भिन्न है और आत्मा अन्दर भिन्न है, तो आत्मा की पर्याय आत्मा में हुई है, शरीर की पर्याय शरीर में हुई है। बाबूभाई! कहते हैं, यह किया, लो! क्या किया तूने? तू कौन है? कहाँ है? वह तो आत्मा है। आत्मा में तो पर्याय हुई। मैं करूँ – ऐसी

पर्याय हुई भले। परन्तु वह पर्याय आत्मा में रही और यह हुई, वह तो इसके पर्याय में हुई; तो आत्मा की पर्याय इसकी पर्याय करती है, वह बिल्कुल झूठ है। आहाहा! वह तो बड़ा वकील है। (संवत्) १९९७ के वर्ष की बात है, हों! बहुत समय हो गया। ३९ वर्ष हुए। मन्दिर होता था, तब थे। आहाहा!

अब 'स्वाश्रितो निश्चयः' 'स्वाश्रितो निश्चयः' है? (निश्चय स्वाश्रित है)' ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, (ज्ञान को) सतत निरुपराग निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही। आहाहा! अपना, हों! अन्दर अपने में। **'निरुपराग = उपरागरहित; निर्विकार।' निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण...** यह वहाँ पड़ा है प्रभु तू। **कारण निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही।**

(वह इस प्रकार :) सहज ज्ञान आत्मा से संज्ञा,... क्या कहा? समझ में आया? पर की बात नहीं, हों! निश्चयनय से स्व-परप्रकाशकपना है। इतना। यह क्या कहा? कि अपने से, अपने में निश्चय से स्व-परप्रकाशक है ही। पर को प्रकाशित करता है, यह अभी प्रश्न नहीं। निश्चय से अपने में, अपने कारण से स्व-पर प्रकाशक जानना, यह निश्चय से अपने में अपने कारण से है। पर के कारण से है नहीं। आहाहा! ऐसी बात! क्या कहा?

फिर से, **'स्वाश्रितो निश्चयः (निश्चय स्वाश्रित है)' ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, (ज्ञान को) सतत निरुपराग निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही।** क्या कहा? ज्ञान तो अपने में ही रहता है। स्व-परप्रकाशकपना भी अपने में है। पर के कारण परप्रकाशकपना है या पर को ज्ञान स्पर्श करता है, इसलिए परप्रकाशक है—ऐसा है नहीं। निश्चयनय से तो अपने में स्व-परप्रकाशक, यह स्वरूप ही उसका है। यह तो अपना स्वतः स्वरूप है। आहाहा! यह निश्चय से, हों! स्व-परप्रकाशक। यह तो पर को जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है, परन्तु स्वयं प्रकाशक स्वभाव तो निश्चय से अपना ही है। समझ में आया? जहाँ यहाँ व्यवहार को निश्चय कह दिया। कैसे?

निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण निश्चयपक्ष से भी... व्यवहार तो ठीक, पर को जाने परन्तु **निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही।** क्या? पर का प्रकाशक

ऐसा नहीं। यहाँ स्वभाव निश्चय से तो स्व-परप्रकाशकपना अन्दर है। वह अपना स्वभाव अपने में है। पर को प्रकाशित करता है, इसलिए स्व-परप्रकाशक है - ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म कहाँ वाँचने जाए? हीरा-माणेक के थोथा के कारण निवृत्ति कहाँ है? शान्तिभाई को...

मुमुक्षु : ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान स्वयं। ज्ञान का स्वभाव स्वप्रकाशक निश्चय से है। पर को प्रकाशित करता है - ऐसा कहना, वह व्यवहार है, परन्तु इसका स्वभाव निश्चय से स्व-परप्रकाशक निश्चयस्वभाव है। समझ में आया? पर को जानना, वह अभी यहाँ नहीं। यहाँ तो आत्मा का स्वभाव निश्चय से स्व-परप्रकाशक निश्चय से है। वह पर को प्रकाशित करता है, इसलिए परप्रकाशक है - ऐसा नहीं। वह परप्रकाशक और स्वप्रकाशक अपना स्वभाव ही है। आहाहा! समझ में आया? वाडीभाई!

एक ओर ऐसा कहना कि पर को प्रकाशित करे, वह व्यवहार है। वह दूसरी बात है। वह तो पर को प्रकाशित करता है, परन्तु स्पर्श नहीं करता; किन्तु यह स्व-परप्रकाशक निश्चय तो स्वतः स्वभाव है। पर के कारण नहीं। पर को प्रकाशित करता है, इसलिए नहीं। स्व-परप्रकाशक निश्चय से अपना स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? प्रभु त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की। और यहाँ निश्चय से **निरुपराग निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण...** क्या कहा? कि परप्रकाश की पर्याय कहीं पर में लीन नहीं है। समझ में आया? परप्रकाश की और स्वप्रकाश की पर्याय पर में लीन नहीं है। वह स्व-परप्रकाश की पर्याय अपने में लीन है। आहाहा! समझ में आया?

फिर से, **(ज्ञान को) सतत निरुपराग निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण...** ज्ञान, ज्ञान में लीन है और ज्ञान का स्वभाव निश्चय से स्व-परप्रकाशक है। पर को प्रकाशे, यह अभी बात नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! निश्चय पर को प्रकाशे, वह ज्ञान आत्मा से अपने से अपने में लीन है। वह ज्ञान कोई पर को प्रकाशित करता है, इसलिए पर में जाता है - ऐसा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

ज्ञान तो यहाँ है और परप्रकाशक कहना, पर को प्रकाशक कहना, यह व्यवहार है, परन्तु पर की प्रकाशक की पर्याय अपने में लीन है। वह परप्रकाशक की पर्याय पर से

उत्पन्न हुई नहीं और पर में है नहीं। समझ में आया? इस लकड़ी को जानना, ऐसे इस लकड़ी को जानना, वह व्यवहार; परन्तु लकड़ी सम्बन्धी का ज्ञान आया, वह ज्ञान तो आत्मा में लीन है। वह स्व-परप्रकाशक निश्चय से स्वयं अपना स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

एक ओर कहना स्व-परप्रकाशक, वह व्यवहार है। दूसरी ओर कहना, यह स्व-परप्रकाशक, वह अपना स्वभाव पर के कारण से नहीं है। वह अपना स्वभाव है, इसलिए निश्चय पक्ष है। आहाहा! ऐसी बात है। यह जवानों को समझ में आता है या नहीं?

मुमुक्षु : जवानों को तो जल्दी समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात जिन्दगी में आयी भी न हो न!

कहते हैं—दो बात—ज्ञान अपना। वह ज्ञान पर को जानता है - ऐसा कहना, वह व्यवहार। तो निश्चय और व्यवहार दो हुए। परन्तु पर को जाननेवाला ज्ञान उस पर में लीन नहीं है। वह तो अपने में है। तो निश्चय और व्यवहार दोनों अपने में है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए निश्चय से... आहाहा! परसम्बन्धी ज्ञान और अपने सम्बन्धी ज्ञान, इसमें आत्मा लीन है। पर में लीन नहीं। पर को जानता है तो पर में लीन नहीं। पर को जानने की शक्ति की लीनता तो अपने में है। आहाहा! इसलिए उसे निश्चयनय से **निश्चयनय से भी...** क्या कहा? ऐसा कैसे कहा?—कि व्यवहार से तो पर को जानता है, यह तो ठीक, परन्तु निश्चय से भी स्व-परप्रकाशक स्वभाव लीनता अपने में है। आहाहा! 'भी' कहा न 'भी'? पर की अपेक्षा लेकर पर को जानता है, ऐसा कहना, यह व्यवहार है, परन्तु स्व-पर को जानने की शक्ति है, वह अपने में लीन है। वह परप्रकाशक शक्ति कहीं पर में लीन नहीं है। आहाहा!

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)